इस वक्त मेरा कहा

नासिर अहमद सिकन्दर

बोधि प्रकाशन
जयपुर 302015

बोधि प्रकाशन

प्रथम सस्करण : जनवरी, 2001
आवरण : मेधातिथि
ISBN 81-87697-40-7

बोधि प्रकाशन, जयपुर के लिए
कमला आर्ट प्रिन्टर्स, जयपुर से मुद्रित एव 64, शान्ति निकेतन कॉलोनी,
किसान मार्ग, बरकत नगर, जयपुर से प्रकाशित। दूरभाष 0141-591087. मूल्य : 100.00

अनुक्रम

जन समस्यायें

लोहा पिघलकर कविता बन गया

नासिर अहमद सिकन्दर मजदूर हैं। वे भिलाई इस्पात कारखाने में काम करते हैं और कविता लिखते हैं। कबीर जुलाहा थे और कविता लिखते थे, उनकी कविता में जुलाहे की कारीगरी आप पहचान सकते हैं। रघुवीर सहाय पत्रकार थे और कविता लिखते थे, घटनाओ की रपट को कविता की संवेदना बनते उनके यहां आप देख सकते हैं। इसी तरह नासिर अहमद का जीवन-कर्म और काव्य-कर्म परस्पर संबंधित हैं। 'लोहा' कविता मे नासिर कहते हैं-

मैं जहां काम करता हूँ वहां बनता है ये
जिस तरह आप देखते नदी तालाब का पानी
उस तरह देखते हम/इसका तरल रूप

लोहा हमारे अनुभव में दृढ़ता से सबसे जुड़ा है। 'फौलादी इरादों' से लेकर 'लोहा लेने' तक सभी मुहावरे यही भाव व्यक्त करते हैं। नासिर के सामने वही लोहा तरल रूप में प्रवाहित होता है- *जिस तरह आप देखते नदी तालाब का पानी।* यह दृश्य स्वयं इतना काव्यात्मक है कि उसे रंग-चुन कर पेश करने की जरूरत नहीं है। लोहा और पानी, एक दूसरे से विपरीत गुण धर्म वाले तत्व एक जैसे हो जाते हैं। पानी तो लोहा नहीं बन सकता, पर लोहा पानी जैसा भी बन सकता है। *तरल होकर लोहा अपना गुण खो नहीं देता,* बल्कि लचीला हो जाता है और 'हमारे घरो और रसोई घरो' मे लेकर 'एक शहर से दूसर शहर या एक राज्य से दूसरे राज्य' को जोडने वाली पटरियो तक अनत रूप धारण करके पूरे जीवन मे फैल जाता है-

हमारे शरीर तक में उपस्थित
हमारे जीवन मे भी शामिल !

यह नासिर का अनुभव है और दूसरों की जरूरत है। अगर थोड़ा-सा 'लोहा' बुद्धिजीवियो के पास भी आ जाये तो साहित्य-सम्कृति की दुनिया मे इतना अवसरवाद न रहे।

नासिर के आदर्श कवि केदारनाथ अग्रवाल ने जुझारू श्रमिक वर्ग को जब-जब *देखा था, लोहे जैसा गलते और ढलते देखा था, नासिर उस लोहे का अपने 'शरीर' मे लेकर* सारे 'जीवन' तक पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं। इसी में वे अपने श्रम और कवित्व की

सार्थकता मानते हैं। इससे अलग उनके लिए कविकर्म की दूसरी परिभाषा नहीं है। श्रम और कविता दोनों का स्वभाव रचनात्मक है। चीजें जैसी हैं, उन्हें उसी रूप में स्वीकार करके प्रतिक्रिया करना वास्तव में अरचनात्मक प्रवृत्ति है; वह एक प्रकार का यथास्थितिवाद है जो श्रम और कविता के अलगाव को उचित ठहराता है। आज की हिंदी कविता में यह प्रवृत्ति बहुत शक्तिशाली है। लेकिन उस प्रवृत्ति से टकराते हुए, कविता में चीजों को हू-ब-हू बनाये रखने का विरोध करने वाली प्रवृत्तिया भी हैं जिन पर आम हिन्दी पाठक अधिक भरोसा करते हैं, भले ही इन प्रवृत्तियों को सेठों और सत्ता के प्रतिष्ठानों में मान्यता न मिलती हो। नासिर इस प्रतिरोधी धारा के कवि हैं। वे श्रमिक और कवि दोनों रूपों मे अपनी आकांक्षा के अनुसार चीजों को ढालते हैं। जिस तरह एक श्रमिक का काम दुनिया के कच्चे माल के बिना नही चलता, उसी तरह कवि का काम अपनी परिकल्पना के बिना नहीं चलता। नासिर अपनी कविता में जीवन-यथार्थ और राग-विरागमय भावजगत को जितनी सहजता से जोड़ते हैं, वह चकित करने वाला है। आडंबरहीनता इतनी कि कविकर्म का आयास दिखायी ही न दे। लगभग केदार जैसी सहजता। कहीं-कहीं केदार की अपेक्षा सपाट और सरल, जो काव्यरचना के अनुशासन और अभ्यास की कमी का द्योतक है।

नासिर के अनुभव की पृष्ठभूमि उसी बुंदेलखंड से जुड़ी है जिससे केदार का आजन्म संबंध रहा। केदार के सामने भी 'रेल की पट्टी' बिछी थी, पर वे उसकी अनदेखी कर सकते थे। नासिर उन साधनहीन किसानों मे थे जो 'पाव की तरह' बिछी पटरियों से होकर 'एक शहर से दूसरे शहर या एक राज्य से दूसरे राज्य' जाकर जीविका के साधन जुटाते हैं। उनका साधन श्रम है और वह उन्हें दयनीय नहीं बनने देता। औद्योगिक श्रमिक वर्ग का अंग बनकर नासिर सामूहिक चेतना से अपनी निजता जोड़ते हैं। जहां 'मैं' काम करता हूँ। वहां 'हमारे सामने लोहा तरल रूप लेता है।' 'मैं' को 'हम' बनाने की प्रकिया सहज होने की प्रक्रिया है, हालांकि यह प्रक्रिया जटिल है और बहुत-से कवियों के लिए वह आत्मसंघर्ष का विषय है। नासिर उन लोगो से अलग हैं जो 'हम' से निर्विकार रहकर अपने 'मैं' को ही सुरक्षित-गरिमामंडित करते हैं।

बुंदेलखंड की प्रकृति लोहे से कम कठोर नहीं है, पर वहां की काव्य-परंपरा में सौंदर्य और सहजता का प्रभाव बहुत अधिक है। छत्तीसगढ़ जाकर इस्पात श्रमिक का जीवन अपनाने वाले नासिर के लिए सौंदर्य और सहजता का मूल्य और बढ़ गया है। नासिर में ईसुरी की लोकसंवेदना केदार से कम है, केदार की तुलना में उनका काव्य लोक पद्माकर से और दूर है। पर केदार से उनका संबंध आत्मीय है। यह संबंध वहां है जहां केदार श्रम और सौंदर्य का अटूट रिश्ता देखते हैं। 'उंगलियां' कविता की आरंभिक पंक्तियां हैं-

हारमोनियम में सुर/उंगलियों की वजह से थे
शहनाई की धुन में सास जरूर थी/पर उंगलियां भी थीं

'छोटे हाथ गुणी ज्ञानी हैं' - मानो केदार का यही भावबोध नासिर का आग्रह बन गया हो। श्रम ही सौंदर्य को रचनात्मक और मानवीय बनाता है। केदार की परंपरा और अपना श्रमिक जीवन, दोनों मिलकर नासिर को यही विवेक देते हैं।

धूमिल के लिए श्रमिक का प्रतीक था लोहा- 'लोहे का स्वाद लोहार से मत पूछो, उस घोड़े से पूछो जिसके मुंह मे लगाम है।' यह बिंब चमत्कारपूर्ण है। लोहार लोहा ढालता है, वह लोहा घोड़े की लगाम बनता है, धूमिल पूंजीवादी समाज में श्रमिक वर्ग को नाथने वाली लगाम नही देखते। यह वर्तमान समाज का एक चित्र है, वर्गों की स्थिति और भूमिका का एक प्रकार का आकलन है। नासिर औद्योगिक समाज के उस जटिल अनुभव का सामना करते हैं, जहां लोहार जिस लोहे को ढालता है, वही उसकी लगाम यन जाता है। इसलिए नासिर की सरलता ग्रामवादी सरलीकरण से अलग किस्म की है।

जीवन की जटिलता को व्यक्त करने के लिए असाधारण स्थितियों और मुहावरों का चुनाव करना या परिचित जगहो के अपरिचित कोने खोज निकालना और इस तरह विलक्षणता, सूक्ष्मता के नाम पर अमूर्त सजाल बुनना आज काफी प्रचलन मे है। नासिर असाधारण के पीछे नहीं भागते। जीवन सबंधो की जटिलता जीवन-स्थितियों में अत्यंत मामूली और रोजमर्रा के अभ्यास की चीज़ों में पहचानी जाती है। नासिर 'मामूली चीजों' को गैर मामूली बनाकर पेश करने वाले रीतिवाद से भी दूर रहते हैं। वे स्थितियों को उनके वस्तुगत संदर्भ में पकड़ते हैं और ये संदर्भ ही उन वस्तुओ को परस्पर-विरोधी परिपार्श्व देते हैं। इसका एक उदाहरण 'टी-टेबल' है। बढ़ई की कारीगरी ने टी-टेबल को बहुत-से कामों के लिए उपयोगी *बनाया था*- 'ऊपर कप-प्लेट या गुलदस्ता, नीचे किताब-कापी या आज का अखबार।' लेकिन, 'हर ड्राइंग-रूम मे रख-रखाव ऐसा कि आमने-सामने मेहमान-मेजबान।' इस तरह, 'बढ़ई की कारीगरी' और 'ड्राइंग-रूम मे रख-रखाव' परस्पर विरोधी सांस्कृतिक भूमिकाओ के संकेतक बन जाते है। इस दबाव मे अपने लिए उपयोग की चीजे दूसरों से आमना-सामना करने का साधन बन जाती हैं। श्रम और संस्कृति का अलगाव वस्तुओं से उनका गुण छीन लेता है, उन्हें साधन बना देता है; वह मनुष्य के बोध को 'स्वाद और सौंदर्य' को भी विच्छिन्न कर देता है।

हो सकता है कि इस तरह की कविताएं अनेक लोगों को सरलीकृत जान पड़ें। लेकिन नासिर आलोचकों और भद्रजनो की परवाह न करके अपनी अनुभूति को बड़ी सादगी से रख देते हैं और इसी क्रम मे वास्तविकता के अनदेखे मर्म उभारते हैं। मिर्च, टमाटर, प्याज, आलू वगैरह के साथ पत्तियां, छिलके, रंग और ताज़गी भी रहती है, 'अब गृहिणी जब कोई पकायेंगी इन्हें तो रहेगा याद स्वाद, सौंदर्य नहीं।' इसे क्या कहियेगा ? विडंबना ? प्रतीक ? व्यंग्य या विलाप ? नासिर की कविताएं इतनी सादी हैं कि काव्यशास्त्र के सांचे मे ढालना असंभव हो जाए। यह सादगी वस्तुस्थितियों और अनुभूतियों के प्रति जागरूकता और सच्चाई से आती है। नासिर जीवन की जटिलता को स्थितियों और अनुभूतियों में पहचानते हैं इसीलिए सरलता का महत्व समझते हैं। वे उतनी ही सादगी से बुलाते हैं, 'आओ बच्चे बनें' यह खोये हुए बचपन को वापस लाने की नहीं, उस बचपन से सरलता, आवेग और मस्ती पाने की चेष्टा है।

नासिर की रचनात्मक दृष्टि की एक विशेषता यह है कि उसका संबंध इधर लगातार क्षीण होती जाने वाली वर्ग-चेतना से जुड़ा हुआ है। वे बाजार संस्कृति के साथ मजबूत होती जाने वाली 'परतंत्रता की जकडन' को खूब पहचानते है इसीलिए खैनी जैसी चीज में साझेदारी की भावना को श्रमिक-संस्कृति का बीज बना देते हैं। वे पिता की मूँछों को 'स्तालिन की तरह' चौड़ी, रौबीली, अनुशासन-प्रिय बताते हैं। विशुद्ध बुद्धिजीवियों की स्तालिन-विषयक धारणा से अनुशासित श्रमिक की भावना कितनी हटकर है ! यह अनुशासन-प्रियता कला को राजनीतिक प्रतिबद्धता से भी जोड़ती है। नासिर की सिफत यह है कि वे प्रतिबद्धता को भी सरल-सूत्र न बनाकर भिन्न-परिपार्श्वों से परिभाषित करते हैं-

छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस की खिड़की से/दिखता है चांद
मेरे साथ-साथ सफर में शामिल/वह कहां जा रहा/पता नहीं/
मैं तो जा रहा भोपाल/पार्टी-मीटिंग मे। (सफर; कॉमरेड संजय पाते के लिए)

प्रकृति सुंदर है और निरुद्देश्य है, मानवकर्म सोद्देश्य है और सार्थक है। इसलिए प्रतिबद्धता की धारणा मानव-विशिष्ट है। लेकिन मानव सत्ता के साथ-साथ और उतने ही अनिवार्य रूप में प्रकृतिसत्ता भी है। इसी विविधता मे मनुष्य का सौंदर्यबोध और सचेत कर्म दोनों का विकास होता है। नासिर इस तरह की जटिल और सूक्ष्म संवेदनाएं इसलिए इतनी सरलता से व्यक्त करते हैं कि उनके लिए उनका पाठक केवल यौद्धिक समाज तक सीमित नहीं है।

नासिर के यहां स्त्री की चिंता अपने ढंग की है। एक और बुर्के में बंद रूढ़िवादी दबाव झेलते स्त्री पत्थर से टकराती है, (लिबास) विज्ञापन के बाजार में सौंदर्य के अंतर्राष्ट्रीय उद्योग हैं (रातों-रात), इन सबके साथ आर्थिक मजबूरियों से अविवाहित रह जाने वाली 'सुंदर सुशील पढ़ी-लिखी' आस-पड़ौस की लड़कियां हैं, जिन्हे बिना भावुकता के, पर गहरी सहानुभूति से कवि देखता है। वह 'जन-समस्याओं' के प्रति अत्यंत खुली और संवेदनशील दृष्टि रखता है। इसलिए 'बाजार की तकलीफ' और 'विज्ञापन के तरीके' का बदलना देखकर दुनिया के भाग्य से इस परिवर्तन का संबंध जोड़ता है और अपनी आकांक्षा व्यक्त करता है-

विश्व-जगत में प्रेम/घृणा में बदल रहा
घृणा प्रेम मे बदलती/तो कोई चिंता न थी।

आज की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था प्रेम को घृणा में बदलने वाली है। मनुष्य से प्रेम करने वालो के लिए यह चिंता का विषय है। वह समय भी आयेगा जब घृणा प्रेम में बदलेगी। नासिर इसी स्वप्न और संकल्प के कवि है। इसलिए हिंदी के वर्तमान काव्य-ससार मे उनकी मौजूदगी आश्वस्त करने वाली है।

अजय तिवारी

बी-30, श्रीराम अपार्टमट्स,
प्लॉट-32, सेक्टर-4, द्वारका, नई दिल्ली- 110045

3 जनवरी, 2001

पती नजमा
और बच्चे -
शगुफ्ता, शहरोज के लिए

पास-पड़ोस

एक नागरिक का वक्तव्य

बच्ची के लिये ले आया गुड़िया
अब अपने जूते
अगले माह लूंगा

ये -
तीन हजार मासिक वेतन पाने वाले
एक नागरिक का वक्तव्य है

बिल्कुल सच्चा !

•

प्रतीक्षा

पत्नी तो क्या आयेगी
खत आयेगा

माँ तो क्या बतायेगी
अपनी बीमारी
खत बतायेगा

पिता तो क्या मांगेंगे पैसे
खत मांगेगा

बच्चे तो क्या पहुँचेंगे
खत पहुँचेगा

तो करो प्रतीक्षा
पूरे घर को
साइकिल के कैरियर में सहेजे

आता ही होगा डाकिया।

•

बोलें

कर्कश न बोलें
कड़वा न बोलें

अनाप-शनाप बककर
फैलायें न नफरत

क्या इतना भी नहीं कर सकते हम -
चींटी ले जाये मुँह में दबाकर
जितनी शक्कर
उतनी रख लें

और मीठा बोलें।

•

हफ्ते भर

हफ्ते भर भी रही अगर
माँ अस्पताल में
तो घर का क्या होगा ?
देखना अच्छा खासा नरक हो जायेगा।

हफ्ते भर भी रही अगर
माँ अस्पताल में
तो देखना अस्पताल हो जायेगा
घर जैसा स्वर्ग।

हफ्ते भर भी रही अगर माँ अस्पताल में।



चाँद-तारों की दुनिया

डॉक्टर ने दे दिया जवाब
'दूसरा अटेक'
अंतिम सांसें शेष

घर-परिवार
सगे-संबंधियों को
बुलवालें

चाँद-तारों की कौन सी दुनिया में आ पहुंचे हम-
पाँच बेटों
तीन बेटियों
और दस-दस नाती पोतों वाली
वृद्धा अकेली

अस्पताल में दम तोड़ती तन्हा।

•

जाति

खरगोश सी मुलायम
देह होगी

फूल जितना
वजन

एक लौकी बराबर
कद

अब इससे क्या -
अभी-अभी जन्मे बच्चे की
जाति क्या होगी।

•

समय काटना

समय काटना
जिनके लिये दूभर हो
चिड़ियों से पंख लें उधार
उड़ जायें

या फिर
वह बच्चा देखें
जो सालभर का होने को है
अब सीखा चलना

क्या करता रहा इतने दिनों
पालने में पड़ा-पड़ा वह !

•

टी-टेबल

किस बढ़ई की कारीगरी
ऊपर कप-प्लेट या
गुलदस्ता

नीचे
किताब-कापी या
आज का अखबार

इधर से उधर सरकाना
इत्ता सरल
इतना आसान
कि उस ओर मुंह
जिधर मेहमान

हर ड्राइंग रूम में
रख-रखाव ऐसा
कि आमने-सामने
मेहमान – मेजबान।

•

मछली और मेंढक

[illegible]
[illegible]
[illegible] मेंढक

मैंने [illegible] को बचाने की [illegible]
[illegible] करती थी
पर [illegible] में दब ही गया

यूं [illegible] घटना नहीं यह
पर ये [illegible] है
मेरे हृदय के [illegible] किनारे में
उसे बचाने की
कोशिश की थी।

स्वाद और सौन्दर्य

मिर्च के साथ आई पत्तियां भी
टमाटर के साथ डंठल

प्याज के साथ छिलके
आलू के साथ उसका भूरा रंग

बैगन संग लटकन जैसा ठूंठ
मानो टोपी

मूली आई
तो आये
उसके ताज पत्ते हरे

अब गृहिणी जब कोई पकायेगी इन्हें-
तो रहेगा याद स्वाद
सौन्दर्य नहीं।



ये कटने का अर्थ
बंटना नहीं है
कटने की यह क्रिया
इस संदर्भ में

कि दूसरों के जीवन में
प्रवेश करें आप
तो इसी तरह।

•

वह

स्टेशन में खड़ी ट्रेन
चल दी अचानक

वह भुजियेवाला
मुश्किल-ब-मुश्किल दस-बारह बरस का
खिड़की का सींकचा पकड़े दौड़ रहा
हाँफ रहा
जान की बाजी लगा रहा

खीसे से निकाल
यात्री के बचे
रुपये लौटा रहा।

•

सबब

राह चलते अचानक मिला वह
दस-बारह की उम्र में
बीस-बाईस का लगता

बातचीत के लहजे से
जाहिर था
पहली बार आया शहर

बात-बात में बताता रहा
मां बचपन से नहीं
घर में तीन बहनें
पिता को दमा

अब नन्हें आगन्तुक से
आने का सबब पूछने की
जरूरत न थी।

•

मुर्गी के अंडे

मुर्गी के अंडे
गिरें तो चटकें
फूट जायें

उबलें तो स्वादिष्ट
मेहमान कि मेजबान
खायें बस खायें

न चीख
न प्रतिकार

निकलते अंडे
पहुंचते बाजार।

•

गेहूं के बोरे

ट्रक में लदे
गेहूं के बोरे
उसके ऊपर तीन हमाल

ज्योंही-
कृषि मंडी पहुंचेगी ट्रक
हमाल उतारेंगे बोरे

ट्रक में लाद लाया गया जिन्हें-
पीठ पर लदेंगे अब।

•

सफर

छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस की खिड़की से
दिखता है चांद
मेरे साथ-साथ सफर में शामिल

वह कहां जा रहा
पता नहीं

मैं तो जा रहा भोपाल
पार्टी-मीटिंग में।

•

(कॉमरेड संजय पराते के लिये)

कैसा समय

कैसा समय आया भाई!

किस दुश्मन की नजर लगी
किस वैज्ञानिक ने गलती की
किस ऋषि ने दिया शाप
किस राजनीतिज्ञ ने
सदियों पुराने बाल की
निकाली खाल
जो इतना बिगड़ा समय

कैसा समय आया भाई
कैसा समय आया!

•

बच्चे बनें

आओ
बच्चों सा चाहें

जिद्द करें
बच्चों सी

मांगे एक दूसरे से कुछ
तो बच्चों की तरह
ठुनककर
फिर न दे पायें
तो कसपता रहे मन

थोड़ी देर को
छोड़ो घर के काम
मैं भी नहीं जाता दफ्तर

आओ बातचीत करें
बच्चों सा तुतलायें
तुम प्यार को कहो 'प्याल'
मैं खींचू चोटी तुम्हारी

आओ
बच्चों की झबिया से
चुरा लायें खिलौने
तुम ले लो कार
मुझे दो चूल्हा
हम तुम खेलें

पल में रूठें
पल में मनें

आआ बच्चे बनें।

•

उंगलियां

हारमोनियम में सुर
उंगलियों की वजह से थे
शहनाई की धुन में सांस जरूर थी
पर उंगलियां भी थीं

कुम्हार का चाक जब घूमता
तो मिट्टी को/उंगलियां ही देतीं आकार

जब 'कैलकुलेटर' न था
तो उंगलियां ही थीं
जोड़तीं-घटातीं/रखतीं पाई-पाई का हिसाब

बच्चा जब पांव लेता
तो उंगलियां ही बनतीं सहारा
मां की सख्त हिदायत में
उंगलियां ही बनतीं गुस्सा
दोनों हाथों की उंगलियां
जब आपस में फैलतीं और मिलतीं
तो प्रार्थना बनती
जब आपस में बंधतीं और मिलतीं
तो मुट्ठियां!

•

फुग्गे

दुनिया में जितने भी होंगे खुशी के क्षण
उन सबमें महान
जब बच्चा पकड़े इसकी डोर

रंगीन दुनिया
और तमाम रंग-बिरंगी चीजों से जुदा
इसका रंग

और सस्ता इतना
कि घर की तमाम जरूरी चीजों के
खरीदने के पैसों से भी
नहीं निकालने पड़ते पैसे

या अन्य चीजों के खरीदने में
जिस तरह जोड़ने पड़ते पैसे
उस तरह भी नहीं जोड़ने पड़ते पैसे

आपके कुर्ते में-
यदि एक सिक्का भी पड़ा हो
तो खरीदा जा सकता है इसे!

•

लिपस्टिक

लिपस्टिक भर से नहीं चल पायेगा काम
बातों में
घुल नहीं जायेगा इसका रंग

तल्ख़ नहीं हो जायेंगे विचार
यकायक

अंतस के दुख खत्म नहीं कर देगी
छुपा भी नहीं पायेगी
लिपस्टिक जुड़ी मुस्कान

सदैव पर्स में पड़ी
कोई कारतूस भी नहीं यह !

•

लिबास

क्या उतनी ही ललक से पहनती हो यह लिबास
जितनी ललक से
शरारा और जम्पर

क्या उतना ही पसंद है इसका रंग
जितने कि अपने बाल काले

रंग तो देखो
जैसे मातम का
चिलमन तो देखो
हाथी के कान

अब चलन से बाहर है यह लिबास
फिर भी लाद इसे
निकली हो सैर को!

सर से पांव तक ढकी
उस खातून से मुखातिब हूँ
जो अभी अभी
एक छोटे से पत्थर से टकराकर
गिरते-गिरते बची।

•

पास-पड़ोस : एक

दो पड़ोसी थे
दोनों के धर्म एक
पर क्या कहते... उसे... जाति
अलग-अलग थी

एक दिन
एक घर
आये मेहमान

घर में चीनी नहीं थी
सो मांगनी पड़ी
पड़ोस से

चीनी जिससे मांगी गई
उसके घर उसने
कभी
चाय तक नहीं पी थी।

•

पास-पड़ोस : दो

वह गृहकार्य में दक्ष
सुन्दर सुशील
पढ़ी-लिखी थी

अंग्रेजी में बात करे
तो अच्छे-अच्छे
अंग्रेजी दाँ ढेर

उसकी बीस की उम्र में चल रही थी
उसके ब्याह की बात
यह मैं
पंद्रह साल पहले की बात बता रहा हूं आपको

आज हाल ये-
वह दुखी है
और जीवन यापन के लिए
'हैप्पी नर्सरी' स्कूल चला रही है।

•

पास-पड़ोस : तीन

वह पांच लड़कियों की मां
लड़के की चाह
सो एक के बाद
हुई पांच

वह पांच लड़कियों की मां
जिसकी दिनचर्या में
लालन-पालन तो शामिल
निगरानी भी शामिल

मानो-
पांच लड़कियां नहीं

फूल हों पांच!

•

पास-पड़ोस : चार

हमारी कॉलोनी की प्राय: सभी स्त्रियां
दूरदराज के गांवों-कस्बों
देहातों से आई हैं

धीरे-धीरे ही
वे रची बसीं
इस शहर में

धीरे-धीरे ही
देखा-देखी
हुई सुविधापरस्त

अब देखिये कि मेरे पड़ोस के
क्वार्टर नंबर टू बी में
अभी कल ही आई है ब्याह कर
फूलपुर गांव की रमा बाई
जिसने रेडियो भी न देखा हो शायद
पर देखा-देखी
आते ही उसने सबसे पहले
'गैस चूल्हा' खरीदा।

•

लोहा

मैं जहां काम करता हूं वहां बनता है ये

जिस तरह आप देखते नदी तालाब का पानी
उस तरह देखते हम
इसका तरल रूप

हमारे घरों और रसाई घरों की
आधी से अधिक चीजें
इसी से निर्मित
दीवार पर ठुकी एक कील तक

लुहार से इसका
जन्म जन्मांतर का रिश्ता

पत्ते-दोनों और मिट्टी के बाद
सबसे ज्यादा चलन में
इसी के बर्तन

एक शहर से दूसरे शहर
या एक राज्य से दूसरे राज्य तक

पांव की तरह बिछे
ये पटरियां बनकर

हमारे शरीर तक में उपस्थित
हमारे जीवन में भी शामिल ये

ये जो सिक्का गिरा जमीन पर-
बोला खन्न से

ये जो गिरी आपके घरों को सुरक्षित करती चाबी-
बजी छन्न से
ये जो बजे घंटे टन्न से
सब उसकी मौजूदगी

ये सब उसकी खनक
उसकी ठनक।

•

पिता की मूंछें

पिता की मूंछें थी रौबदार
पूरे चेहरे में
तलवार सी तनी

मूंछे थी
तो रौबीले थे पिता
गर्वीले थे पिता

हम पांच भाई-बहन
पिता की तरह
पिता की मूंछों को भी
परिवार का सदस्य मानते
और सेवा करते

एकाध भी दिखता सफेद बाल
तो ऐसे जुटते निकालने
जैसे कोई धब्बा
पिता के चेहरे पर

जीवन भर पिता ने मूंछें नहीं काटी

जैसे जीवन भर पिता
झूठ नहीं बोले

स्टालिन की तरह थी पिता की मूंछें
चौड़ी
रौबीली
अनुशासन प्रिय।

•

चुटकी भर

तमाम वैधानिक चेतावनी के बावजूद
वह मुंह में
ओंठों के बीच दबी है

वह चुटकी भर है
पर मिर्च नहीं
हल्दी नहीं
नमक नहीं

पर नमक सा स्वाद है उसमें
इसके निर्माण की कला में
निपुण होता है
इसका बनाने वाला

हर किसी को नहीं आता यह हुनर
हर कोई नहीं जानता
हथेली और
अंगूठे का श्रम

वो देखो!

ठेका श्रमिकों की पूरी टोली
और एक साथी
बना रहा इसे
अंगूठे से रगड़ता
हथेलियों की ताल से चूना झराता
अब बारी-बारी सब उठायेंगे
कोई नहीं लेगा ज्यादा
कोई नहीं मारेगा
किसी का हक

बस चुटकी भर
मुंह में
ओंठों के बीच दबायेंगे।

•

जन-समस्यायें

अविश्वास प्रस्ताव पर बहस : एक

माननीय अध्यक्ष महोदय!
छः दिसम्बर को क्या घटा देश में

छः दिसम्बर के बाद
क्या-क्या घटा
पूरे देश में

माननीय महोदय!
देश में वर्ष भर की मृत्युदर न निकालिये
एक दिन की निकालिये
सिर्फ एक दिन छः दिसम्बर

हल्ला! (विरोध)
हल्ला! (विरोध)

सरकार ने कितने...
तीन हजार कश्मीरी..
धारा 370...

खैर अध्यक्ष महोदय!

जाने दीजिये
जिस हिन्दू का खून न खौले.
किसका नारा था ?

बस महोदय!
इतना ही पूछना था
धन्यवाद!
(मेज की थाप गूंजती है)
(हल्ला बढ़ता है)।

•

अविश्वास प्रस्ताव पर बहस : दो

मुसलमानों से हमारा कोई विरोध नहीं
कोई बैर नहीं

हम चाहते हैं
हम लाना चाहते हैं
देश की मुख्यधारा में

हम दूसरी पार्टियों की तरह
वोट बैंक, मात्र वोट बैंक
नहीं मानते
सम्मानित नागरिक मानते हैं

आपका समय हुआ
दस मिनट दिये गये थे आपको

नेक्स्ट; उमाभारती!



संख्या

संसद में पक्ष
ढाई सौ से ज्यादा
विपक्ष
डेढ़ सौ से कम

क्षेत्रीय पार्टियां
सौ के आस-पास
मिली-जुली अन्य बीस-तीस-पचास

अब पांच सौ पार संसद में
जन-प्रतिनिधियों की संख्या पर गौर न करें

जनतांत्रिक प्रणाली का उड़ेगा मजाक।

•

कमल का फूल

मेज पर क्या ?
कमल का फूल

कमल का फूल कहां ?
मेज पर

ये तो वही बात
सत्ता किसकी ?
विपक्ष की

विपक्ष कहां ?
सत्ता पर।

•

(प्रथम मायावती सरकार बनने पर)

रातों-रात

रातों-रात खिताब
रातों-रात सुन्दरी
रातों-रात यह गज़ब

ये गज़ब रातों-रात
क्यों और कैसे हो गया

अब तो ज्यादा खूबसूरत
'कैमे' हो गया।

•

(सुष्मिता द्वारा विज्ञापित 'कैमे' साबुन)

आका

किसी रेडियो का नाम नहीं था
दुनिया जहान के
आका का नाम था बुश

क्लिण्टन भी किसी –
फाउण्टेन पेन का नाम नहीं।

•

रातों-रात

रातों-रात खिताब
रातों-रात सुन्दरी
रातों-रात यह गज़

ये गज़ब रातों-रात
क्यों और कैसे हो ग

अब तो ज्यादा खूब
'कैमे' हो गया।

डॉलर

रियाल से पूछो
डालर का मतलब

फौरन मिलेगा जवाब
सुरक्षा परिषद की टेबल।

•

(इराक मे लगे आर्थिक प्रतिबध पर)

पहाड़

चिड़ियां और गिलहरियां होती हैं पहाड़ पर
अनेकानेक वनस्पतियां, प्राकृतिक दृश्य
और जीवनदायी
जलवायु होती है पहाड़ पर

पहाड़ कहां-कहां हैं ?

भारत में तो हैं
चीन में तो हैं

क्या अमेरिका में भी पहाड़ हैं ?

•

डॉलर

रियाल से पूछो
डालर का मतलब

फौरन मिलेगा जवाब
सुरक्षा परिषद की टेबल।

•

(इराक मे लगे आर्थिक प्रतिबध पर)

परमाणु अप्रसार संधि पर

परमाणु अप्रसार संधि के उन्वान तहत
कौन लिख रहा मजमून
नीचे दस्तखत
मोटे-मोटे
हरुफों में

देता
हिदायत सख्त
हमारे हाथ
चाबुक भी न हो।

•

ऊंची हुई नाक

ऊंची हुई नाक

ओ किसान
ओ मजदूर
तेरी पूंजी खाक !

खुशियां
बलायें ताक !

विश्व बाजार में
जम गई
अपनी धाक !

ऊंची हुई नाक !

•

(गेट समझौते के विरोध मे

एक अंतर्राष्ट्रीय चिंतन

जैसे बाजार की टेक्नीक बदल रही
भाव बदल रहे
विज्ञापन के तरीके बदल रहे
ठीक उसी तरह
रंग बदल रहे
स्वाद बदल रहे
रुचियां बदल रही

पत्तियों के हरे रंग हो जाते और हरे
तो कोई हर्ज न था

आम पकता हो जाता और मीठा
तो कोई बात न थी

एक अंतर्राष्ट्रीय चिंतन-
विश्व-जगत में प्रेम
घृणा में बदल रहा
घृणा/प्रेम में बदलती
तो कोई चिन्ता न थी।

•

अतिरिक्त सतर्कता

अतिरिक्त सतर्कता के साथ रखें शब्द

रोते-गिड़गिड़ाते
अर्थ खो चुके
शब्द न रखें

जैसे सांप बदले केंचुल
बदलें शब्द
जो सांप सा फुफकारे जरूर

किसी को ऐतराज हो; तो हो
'हो' रखा मैंने

कोई चीखे; तो चीखे
'ची' रखा मैंने

बचा शब्द 'मीन्ह'
यह रखा मैंने !

•

बरसों बाद

बरसों बाद
मौसम आया
छाये काले मेघ

बरसों बाद
पिंजरा टूटा
काली मैना बाहर

बरसों बाद
दड़बे से बाहर
चूजे काले प्यारे

बरसों बाद
खिले चेहरे
संवरे काले केश

स्वागत! स्वागत! स्वागत!
बरसों बाद
केनवास पर छिटका काला रंग।

•

(अफ्रीका की आजादी पर)

पूंजी : एक

पूंजी का भोंपू
करता शोर

पूंजी का डंका चारों ओर।

•

पूंजी : दो

फिर ले आये
देश के शासक
दूर देश की पूंजी

फिर लायेंगे देश के शासक
दूर देश के शासक।

•

वे

पांच भाई पाण्डव के जैसे
आदर्श नहीं रखते थे
पांच उंगलियां हाथ में जैसे
कभी नहीं रहते थे

वे गुण्डे थे, गुण्डे
पांचों गुण्डे
पांच राष्ट्र के
पांचों में बनती थी

कभी नहीं ठनती थी।

•

टी. टी. ई.

वह टी. टी. ई.
मुंबई-हावड़ा मेल का
आरक्षित डिब्बों में
भुसावल तक ड्यूटी उसकी

वकीलों जैसा पहने
काला कोट
काली कमाई करता रहता

यात्रियों से आरक्षण पर
एक सीट के सौ-सौ लेता।

•

एक कुली की गाड़ी

एक कुली की गाड़ी
अजब-गज़ब लकड़ी की गाड़ी
दो-तीन लकड़ी के पटिये
और दो पहिये

प्लेट फार्म पर दौड़ लगाती
उसकी
ताकत के दम पर

जीवन नैया खेती गाड़ी
जीवन गाड़ी
है ये गाड़ी

एक कुली की गाड़ी।

•

विकास

विकास चाहती सरकार
हम
बराबर के हिस्सेदार

अब ये अलग बात-
सरकारी फरमान मान लेने के बावजूद
स्कूटर बजाज में अँट न रहा था

हमारा सीमित परिवार।

•

आजादी

देश में आई कब आजादी
हमको क्या मालूम

हम हैं भोली-भाली जनता
और बेहद मासूम

देश में आई कब आजादी
बोले खादी वाले

या
फिर सोना-चांदी वाले।

•

(आजादी की 50वीं वर्षगांठ पर)

बच्चे की बोली

बच्चे की बोली
मीठी
मिश्री की डली

हिन्दी
न उर्दू
तोतली

बच्चे की बोली।

•

जन

बूझो
जानो
जन का मतलब

जन का है
संघर्ष से नाता

जन होता है
युग-निर्माता।

•

जन-समस्यायें

दसियों-बीसियों नहीं
सैकड़ों-हजारों समस्यायें

छोटी-मोटी मिला दें
मसलन कहां जाते शौच को
तो लाख भी हो सकती हैं

अपनी किस्मत जान
जिन्हें किया नजरअन्दाज़
उन्हें जोड़ें
तो शायद
करोड़ हो जायें

!
के साथ-साथ
ों को भी

।

•

जन-समस्यायें

दसियों-बीसियों नहीं
सैकड़ों-हजारों समस्यायें

छोटी-मोटी मिला दें
मसलन कहां जाते शौच को
तो लाख भी हो सकती हैं

अपनी किस्मत जान
जिन्हें किया नजरअन्दाज़
उन्हें जोड़ें
तो शायद
करोड़ हो जायें

मान्यवर!
जनगणना के साथ-साथ
जन समस्याओं को भी

गिना जाये ठीक-ठीक।

•

चौबीस हजार वर्गफुट में बसी बस्ती

ये कैसा जन जीवन
जहां जन-जीवन नहीं

रेल्वे स्टेशन के समीप
ठीक पटरियों के बगल से
लगभग चौबीस हजार वर्गफुट में बसी
कैसी बस्ती ये
जहां सूरज उगने से पहले
शुरू होती दिनचर्या

जहां पेट के लिये होते अजब-गज़ब धंधे
जहां पुरुष तो पुरुष
स्त्रियां तो स्त्रियां
बच्चे तक उठते
जो रुपये, दो रुपये या पांच रुपये तक का
दिन भर में ढूंढते काम

ये रेल्वे की जमीन
कुछ पढ़े लिखे कहते
जो हथियाई इन लोगों ने

करते भी क्या
कुछ कार्यकर्ता कहते-
जब न मिली
आजाद मुल्क में भी रहने लायक जगह
जबकि मतदाता सूची में बराबर मिलता नाम
और मतदान भी शत-प्रतिशत

वैज्ञानिक युग में भी पिछड़ापन इतना यहां
कि होता कोई बीमार
तो झाड़फूक पर करते विश्वास
जादू-टोना, जंतर-मंतर
आस्था का प्रश्न इनके लिये
जैसे आपके लिये आज तक धर्म

मैं दर्ज करना चाहूंगा गिनीज बुक में
पांव द्वारा चली इनकी कुल दूरी
क्योंकि बचपन से आज तक
ये सिर्फ चले हैं
वो भी- नंगे पांव

साइकिलें तक नहीं होती यहां
होंगी भी
तो इक्की-दुक्की
वो भी ऐसी खड़खड़िया
बिगड़ी
कि ब्रेक में कोई तार
तो सीट में
बंधा कोई कपड़ा

यहां किसी के पास नहीं जमीन-जायदाद
बैंक-बैलेंस
इनके दांतों की हिफ़ाजत नहीं करता कोई टूथपेस्ट
न बालों का पोषण कोई तेल
न काले कोई खिजाब
न त्वचा की सुरक्षा करती कोई क्रीम
न बच्चों को स्वस्थ रखता कोई विटामिन
न मैल दूर करता कोई साबुन
न झागवाला कोई सर्फ
धोता कपड़े

रेल्वे स्टेशन के समीप
पटरियों के बगल से
यह मेरे राज्य के मेरे शहर का नहीं
बल्कि हर राज्य के
हर शहर का जन-जीवन है
जहां जन
जीवन नहीं

या जन का
जीवन यही

और मजे की बात
जब कोई रेल इन बस्तियों मे गुजरती
तो इनके बच्चे- ऐसे हिलाते हाथ
मानो कहते जाओ खुश रहो।

•

साबुन की टिकिया

साबुन की एक टिकिया, गोल, चोकोर, आयताकार
साबुन की एक टिकिया महकदार
साबुन की एक टिकिया झागदार

चिकनी इतनी
मुश्किल थाम पायें उंगलियां
जरा सी इधर-उधर या ढीली पकड़
कि फिसली
टिकिया

बनाने की विधि जिसकी इतनी सरल
कि लघु उद्योग

परतंत्रता की जकड़न भी
फाइन रेपर व आकर्षक पैंकिंग में
साबुन की एक टिकिया।

•

दर्ज करता है एक बच्चा अपना विरोध

हम बाइस्कोप देखना चाहेंगे
बंदर-भालू नाच देखना चाहेंगे
अपने शहर
कभी-कभार सर्कस आये
तो उसे जरूर देखना चाहेंगे

दर्ज करता है एक बच्चा अपना विरोध
हम टी. वी. देखना नहीं चाहेंगे
कोई भी चैनल
हम नहीं देखना चाहेंगे।

•

चैनल

अपने जरूरी–जरूरी कामों को छोड़
आप टी. वी. देख रहे हैं

बाढ़ की तरह आये चैनलों में
कौन सा चैनल देख रहे हैं

किस चैनल में रम गया मन आपका
कौन सा है आपके काम का ?

•

रंगों से गुज़ारिश

गुस्से में चाहे आ जाना
चेहरे पर
पर जायदाद की खातिर
भाई के गले से
मत फूटना लाल रंग
बच्ची की फ्रॉक पर
खिले रहना
पूरी रंगत के साथ

ओ सफेद!
पिता के बुढ़ापे में
सर का ताज बन आना जरूर

तोते से हरियल रंग!
पत्ती में बने रहना
धरती को रखना हरी भरी

चित्रकार के हाथों
कठपुतली मत बनना

मिट्टी में बने रहना मटमैले !
मेरे सिक्कों के
ओ चाँदी के चमकीले रंग
पूंजी और काला बाजारी के बीच
खूब-खूब चमकना।

•

इस वक्त मेरा कहा

अमरूद की एक फाँक
नमक के साथ चुभलाओ
स्वाद जानो

बच्चे से कभी
उसकी गेंद मांगो
खेलो, बचपन जानो

अपने को कभी
पेड़ बना लो
हाथों को डालियां
मुंह को
चिड़िया की चोंच समझो
पेड़ और चिड़िया से रि

घुमक्कड़ सैलानी बन
दुनिया मत देखो
दुख-दर्द जानो

इस वक्त
हां इस वक्त मेरा कहा



नासिर अहमद सिकन्दर

जन्म तारीख : 15 जून, 1961
बी. एस-सी. (गणित) तक शिक्षा।

वर्ष 1994 में मध्यप्रदेश साहित्य परिषद से प्रथम काव्य संग्रह 'जो कुछ भी घट रहा है दुनिया में' प्रकाशित।

लेखकों से लिये साक्षात्कारों की पुस्तक 'कुछ साक्षात्कार तथा अभिव्यक्ति' एवं राज्य संसाधन केन्द्र, भोपाल (म. प्र.) द्वारा नवसाक्षरों के लिये काव्य-पुस्तिका 'खोलती है खिड़की' प्रकाशित।

प्रथम केदारनाथ अग्रवाल सम्मान तथा सूत्र सम्मान से सम्मानित।

संप्रति : भिलाई इस्पात संयंत्र के ऑक्सीजन प्लांट-2 विभाग में कार्यरत।

संपर्क

एल. आई. जी. 124, आमदी नगर (हुडको)
भिलाई नगर, जिला : दुर्ग (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : 0788-323659

ISBN-81-87697-40-7